रस एवं सौंदर्य विधान की परिधि में फिल्मी एवं शास्त्रीय संगीतः एक अवलोकन

डॉ० क्यूटी

सहायक प्राध्यापिका

एच.के.एम.वी. (जींद)

भारतीय संगीत अनुभवजन्य है और इस अनुभव के लिए कोई विद्वान या संबंधित विद्या का मर्मज्ञ होना आवश्यक नहीं। क्योंकि संगीत संस्कारों व भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। जिस प्रकार जल को भले हम काँच के पात्र में पिएं, धातु पात्र में अथवा हस्ताजंलि से ग्रहण करें उसका उद्देश्य दाहकता समाप्त करना है, प्यास बुझाना है।[1] वह अनेक माध्यमों से गुजरता हुआ अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है। इसी प्रकार संगीत भले शास्त्रीय हो, लोक हो या सुगम, हर श्रेणी में उसका परम लक्ष्य एक ही रहता है और वह है – रस की सृष्टि। तभी संगीत की यह परिभाषा सार्थक होती है – 'स्वर ताल में बंधी वह रचना जो मानव मन को रसानुभूति करवाए वह संगीत है'। इसके विपरीत संगीत कोलाहल की श्रेणी में परिवर्तित हो जाता है।

शायद रस की सृष्टि करने में और प्रत्यक्ष रूप से मानव मन को प्रभावित करने में सुगम, संगीत, फिल्मी संगीत सफल रहा। कारण यह रहा कि संगीत बनाने वाले फिल्मी कलाकार अधिकांशतः अशिक्षित होते हुए भी मन से उठने वाली हिलोरों के माध्यम से अनजाने में ही यह सामंजस्य करने में समर्थ होते हैं, लहीाी कम आश्चर्य की बात नहीं। आजकल संगीत सुनने वाला भाव या रस के विष्य की गहनता को कुछ भी नहीं जानता अतः रस के साथ राग, काव्य, छंद और ताल के सामंजस्य की आशा उनसे करना व्यर्थ है। मन से उठ कर बनाया हुआ संगीत मन पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। फिल्मी संगीत में सौंदर्य कलाकारों का समूह तीन–चार मिनट की छोटी सी रचना के लिए संगठित होकर सुनियोजित रूप से एक व्यक्ति के लिए निर्देशन में पूर्ण श्रम करता है, ताकि श्रोता को रसमग्न किया जा सके।

संगीत कला के शास्त्रीय व परपरांगत नियमों के पालन से, विविध सौंदर्य

उपादनों के समुचित प्रयोग से, कलाकार की प्रतिभा व कृत्तित्व – कौशल्य से संपन्न सुंदर प्रस्तुतिकरण से, अनुकूल वातावरण में श्रोताओं के ग्रहणशील होने पर, संगीत कला से जो विलक्षण आनंदानुभूति होती है वही सौंदर्यानुभूति अथवा विशुद्ध रसानुभूति है।

परम सुंदरम की अनुभूति ही विशुद्ध आनंद अथवा 'परम रस' की स्थिति है।[2]

'रस' की व्याख्यसा तैतिरीय उपनिषद में इस की गई हैं–

रसौ वै सः रसं हयेवायं लब्ध्वाऽ ऽनन्दी भवति।[3]

अर्थात् 'ब्रह्म' रस रूप है। रसावस्था में प्राप्त आनंद ब्रह्मानंद के समान आलौकिक और विलक्षण होता है।

भारतीय मनीषियों ने इसी रस की खोज और मीमांसा में अपनी साधना के अनेक वर्ष कई पीढ़ियों तक लगाए है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में पहली बार भाव, विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव के परस्पर संयोग से ही रस की उत्पति बताई गई है। अभिनवगुप्त के अनुसार रसानुभूति लोकोत्तर है। क्योंकि यह इंद्रियों के संस्पर्श से परे है। एक क्षण ही उस दिव्यानुभूति की पकडना संसारिक प्रपंच से ऊपर उठ जाने में समर्थ है। इसीलिए मनीषियों ने इसको 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा है।

वैसे रस को मुख्यतः आस्वादक ही समझा गया है। इसके अर्थों में किसी वस्तु का तरल, निचोड़, आस्वाद–सारतत्व या अन्ततः आनंद ही मानकर उसकी व्याख्या की गई है।

'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' में आस्वाद की प्रधानता मानी गई है।

रस के लक्ष्ण को पकड़ते हुए सरते इत रसः कहा गया तो उसके मुख्य लक्ष्ण द्रवता को ही पकड़ा गया।

द्रवता ही रस के संधान का सर्वोच्च लक्ष्य है। भाव जागृत करना और पुनः उसे रस में प्रतिष्ठित करने का उद्देश्य यही है कि वह मानवीय चित्त को संस्कारित करके उसे द्रवित करे। यही रागोत्पन्न रस की परिणति है।[4]

भरतः का रस सूत्र तथा उसकी निष्पत्ति नाटक के आधार पर समझी गई थी। उसके बाद चिंतन में उसी रस सूत्र अथवा रस सिद्धांत का दायरा काव्य तक बढ़ा दिया। लेकिन काव्य में नाटक की भांति प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं होता। धीरे– धीरे इस चिंतन की परिधि ने नाटक से काव्य तक ही नहीं अपितु संगीत को भी अपने दायरे में समेट लिया।[5]

संगीत केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं बल्कि एक ऐसा चिरस्थाई आनंद है

जिसे से हमें आध्यात्मिक सुख मिलता है। संगीत से तात्पर्य केवल शास्त्रीय संगीत से नहीं बल्कि भाव संगीत, चित्रपट संगीत, लोक संगीत आदि सभी से है। मानव जीवन प्रारंभ से अंत तक संगीतमय रहता है। संगीत सर्वकालीन विद्या कही गई है।[6] संगीत कला में शब्दों का सहारा छोड़कर मात्र ध्वनि संयोजन के आधार पर रचना की जाती है। अनेक विद्वान इन ललित कलाओं में साहित्य का स्थान सर्वश्रेष्ठ मानते है। परंतु विचारणीय तथ्य है कि 'शब्द' हमारी आत्मा के सर्वाधिक समीप है। साहित्य में शब्दों को सुनते समय हमारी बुद्धि को उनके अर्थों और भावों को ध्यान में रखना पड़ता है, तभी साहित्य आनंददायक होता है। परंतु किसी वाद्य द्वारा उत्पन्न संगीत में केवल आ ऽऽ रागालाप की अभिव्यक्ति ही आनंदप्रदायी होती है। संगीत में केवल नाद द्वार ही भावभिव्यक्ति हो जाती है। जो आनंद संगीत द्वारा मनुष्य को प्राप्त हो सकता है वह किसी अन्य ललित कला द्वारा संभव नहीं है। इसी कारण ललित कलाओं में भी संगीत सर्वश्रेष्ठ है। समाज में मनोरंजन हेतु लोक कलाओं व ललित कलाओं को ही माध्यम माना जाता है। संगीत में ऐसी भी क्षमता है कि उसमें सभी ललित कलाएं भी समाहित हो सकती हैं। ललित कलाएं स्वयं में भी इतनी सामर्थ्य रखती है कि जन मानस पर अपना प्रभाव छोड पाएं लेकिन संगीत में भी एक संगीत एका है जो जन साधारण को खुद ही आकर्षित करता है और वह है फिल्मी संगीत। इस संगीत के माध्यम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा आस्वादन किया जा सकता है। यदि फिल्मी संगीत के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम पाऐंगे कि इसका इतिहास अधिक पुराना नहीं है। इतिहास अध्ययन से यह पता चलता है कि फिल्म व संगीत एक दूसरे के पर्याय ही हैं। फिल्म की कल्पना संगीत के बिना असंभव है। प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि जब किसी फिल्मी निर्माता ने संगीत विहीन फिल्म बनाने का दुस्साहस किया तो उसे निराशा का मुँह देखना पड़ा। वस्तु स्थिति यह बन गई है कि संगीत फिल्म की आत्मा है।

संगीत के बिना फिल्म निष्प्राण हुई इस सत्य के प्रतिपादन के लिए फिल्म 'नौजवान', 'तूफानी सवार', 'मुन्ना', 'ऊँचे लोग' आदि को लिया जा सकता है। जिनमें संगीत के बिना सफलता पाने का सपना संजोयां गया, लेकिन यह प्रयास प्रयोग दुराशा मात्र सिद्ध हुआ। सच्चाई यह है कि आज संगीत पर ही सुखद फिल्मों का सुखद भविष्य निर्भर है।7

सर्वप्रथम सन् 1916 में निर्मित चित्र 'राम वनवास' नामक मूकपट परंपरागत परिवेश में स्थापित हुआ। उस समय में संगीत के महत्व को महसूस करते हुए पर्दे के पीछे गायकों को बैठा कर उनसे संगीत गवाया जाता था। लेकिन बदलते समयानुसार जब 1931 में 'आलमआर' फिल्म का निर्माण हुआ तब मात्र 3 गीतों के साथ संगीत का नियोजन सैय्यद साहिद वल्द अली नामक संगीतकार ने किया।

आधुनिक परिवेश की भांति वाद्यों की संख्या भी कम ही उपलब्ध थी, फिर भी फिल्म 'आलेमआरा' ने काफी लोकप्रियता हासिल की। उस समय के संगीत की आनंद की दृष्टि से यदि आज के संगीत से तुलना की जाए तो आनंद का अनुमान ही नहीं लगा सकते।

प्रारंभ समय की फिल्मों में संगीत का प्रयोग संवाद अदायगी के लिए किया जाता था। इसमें उस काल में कलाकार की सांगीतिक क्षमता का भी प्रदर्शन होता था। के.एल. सहगल, के.सी.डे., पहाडी सान्याल जैसे गायक बंगाल में हुए। दिनों दिन संगीत विकसित होने लगा।

पूर्व भारत में कलकता अंग्रेजों के संपर्क में आने के कारण वहां पर अंग्रेजी संगीत का प्रचार भी हुआ। कुछ बंगाली संगीत निदेशेकों में भारतीय संगीत में अंग्रेजी संगीत को मिला कर नवीन संगीत की रचना की।

नवीन शैली के संगीत – 'प्रेम नगर में बनाउंगी घर में' मन की आंखे खोल, आदि अनेक नई धुनों का परिष्कार हुआ। गुलाम हैदर, पं0 अमरनाथ, श्याम सुदंर, खुर्शीद, पंजाबी संगीतकार, नौशाद फिर ओ.पी. नैय्यर प्रसिद्ध रहे। तत्पश्चात्, देवयोग से लता मंगेशकर, आशा भौंसले, गीतादत्त, रफी, मुकेश, मन्नाडे, हेमंत कुमार, मंहेद्र कपूर, किशोर कुमार आदि अनेक गायक–गायिकाओं का उदय हुआ। रूह से गाकर और रूह तक असर छोड़ने वाले कलाकार रहे।

आज उपभोक्तादी संस्कृति में कला का महत्त्व घटता जा रहा है। विज्ञान के प्रयोगों से तकनीकी गुणवता तो बढी है लेकिन मानवता घटी है। पार्श्व गायन तकनीकी की दृष्टि से आसान हो गया लेकिन संगीतकार का महत्व समाप्त हो गया। धुनें पहले तैयार होती है और गीत लिखना पड़ता है। प्राचीन समय में ऐसा नहीं था। कला का जन्म प्रेरणा से होता है वह व्यक्ति और परिस्थिति के अधीन होती है। इसलिए सृजन में हमेश कर्ता की कृति का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। जोकि उसकी मौलिकता का प्रतिबिंब है।

संगीतकार स्वयं यह स्वीकार करता है कि हम अपनी धुनों के निर्माण में लोक धुनों का आश्रय भी लेते हैं। यह सही भी है जोंकि फिल्म संगीत भी जन–जन का संगीत है और व्यवसाय प्रद भी है। जन रूचि का ख्याल भी उतना ही जरूरी है।

चकित करना व तन्मय करना दोनों, दो अलग बातें है। आज के तथाकथित शास्त्रीय संगीत से हम चकित तो हो सकते हैं लेकिन तन्मय फिल्मी संगीत से ही होते हैं इसलिए आधुनिक जन फिल्मी गीतों का आनंद लेते हुए पाए जाते हैं। अब संगीत का साधना, व्यवसाय, रस संधान और सौंदर्य विधान सभी दृष्टियों से देखा जाए और विचार किया जाए तो वास्तिवकता हमारे समक्ष है। इस तथ्य पर विचार कर हम निश्चित रूप से संगीत भले किसी प्रकार का हो उसे उसका स्थान दिला पाऐंगें।

सहायक संदर्भ पुस्तकें–

1. फिल्मी शास्त्रीय अंक – 1973, संगीत मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हथरस।
2. भारतीय संगीत का सौंदर्य विधान – मधुरलता भटनागर – पृ0 3–4।
3. उपनिषद – भाष्यम्, संख्या–1, एस. सुब्रहमण्यम शास्त्री, पृ0 537।
4. राग और रस के बहाने – केशवचंद्र शर्मा, पृ0 39–40।
5. संगीत का सौंदर्य बोध (फिल्मी संगीत के संदर्भ में) – डा0 उमा गर्ग पृ0 81।
6. फिल्म संगीत निर्देशक रोशन व उनके समकालीन संगीतकार – सीमा जौहरी, पृ0 4–6 ।
7. वही – पृ0 15–16।